सांस्कृतिक मंच पर स्थानीय प्रतिभाओं को मिलता है मौका

नगर पालिका परिषद के सांस्कृतिक मंच पर स्थानीय प्रतिभाओं को मौका मिलता है। यहां लोक कला और सांस्कृतिक कार्यक्रमों की भरमार रहती है। काव्य गोष्ठियां, लोक गायन, नृत्य, नाट्य मंचन, शायरी और स्कूली बच्चों के कार्यक्रम इस मेले को जीवंत बना देते हैं। यह मंच स्थानीय और क्षेत्रीय प्रतिभाओं को अपनी कला दिखाने का सुनहरा अवसर देता है।

आस्था, परंपरा का अद्भुत संगम चैती मेला

गोला गोकर्णनाथ की पावन धरती पर जब चैत्र की मंद बयार बहती है, तो वातावरण में भक्ति, उल्लास और लोकजीवन की मधुर गूंज एक साथ सुनाई देने लगती है। गोकर्णनाथ महादेव मंदिर की घंटियों की अनुगूंज के बीच सजी यह नगरी मानो समय के किसी प्राचीन अध्याय में प्रवेश कर जाती है, जहां हर कदम पर आस्था की छाप और हर चेहरे पर उत्सव की आभा झलकती है।

-विकास शुक्ल
लखीमपुर खीरी

इसी पावन भूमि पर सदियों से सजी आ रही है चैती मेले की वह परंपरा, जिसने समय के साथ न केवल अपनी पहचान बनाई, बल्कि लोकसंस्कृति के संरक्षण का एक जीवंत माध्यम भी बन गई। वर्ष 2026 में यह मेला अपने 121 वें वर्ष में प्रवेश करते हुए इतिहास और वर्तमान के अद्भुत संगम का साक्षी बन रहा है। यह मेला केवल धार्मिक आस्था का केंद्र नहीं, बल्कि भावनाओं, रंगों और रचनात्मकता का विशाल उत्सव है।

यहां जब लोकगायक अपनी स्वर लहरियों में गांव की मिट्टी की महक घोलते हैं, तो श्रोता अनायास ही उस सांस्कृतिक विरासत में डूब जाते हैं। काव्य गोष्ठियों में शब्दों की सरिता बहती है, तो नाट्य मंचन और नृत्य प्रस्तुतियां जीवन के विविध रंगों को साकार करती हैं।

मेले की गलियों में चलते हुए ऐसा प्रतीत होता है मानो हर दुकान, हर झूला, हर स्वर किसी कहानी का हिस्सा हो। एक ऐसी कहानी, जो पीढ़ियों से कही-सुनी जाती रही है। लकड़ी से बनी वस्तुएं, क्राकरी, हस्तशिल्प की निपुणता और सोफ्टी का स्वाद इस मेले को केवल व्यापार का नहीं, बल्कि जीवन के उत्सव का केंद्र बना देती है। भीड़ का बढ़ता सैलाब यह बताता है कि बदलते समय के बावजूद इस मेले की आत्मा आज भी वैसी ही है, अडिग, जीवंत और आत्मीय। यहां आने वाला हर व्यक्ति केवल दर्शक नहीं रहता, बल्कि इस परंपरा का एक हिस्सा बन जाता है। बहरहाल, गोकर्णनाथ का चैती मेला केवल एक आयोजन नहीं, बल्कि समय की धारा में बहती वह सांस्कृतिक कविता है, जो हर वर्ष नए भाव, नए रंग और नई ऊर्जा के साथ जनमानस को जोड़ती है और यही इसकी सबसे बड़ी विशेषता है।

पहली बार पर्यटन विभाग से मिले 40 लाख रुपये

नगर पालिका परिषद का ऐतिहासिक चैती मेला करीब 121 साल पुरानी परंपरा है, लेकिन पहली बार पर्यटन विभाग ने 40 लाख रुपये की धनराशि स्वीकृत की है। यह राशि जिला पर्यटन एवं संस्कृति परिषद लखीमपुर खीरी को जारी होने से मेले की व्यवस्थाएं अब और अधिक व्यवस्थित, आकर्षक और दर्शनीय हो गई हैं। इस धनराशि के पारदर्शी उपयोग के लिए डीएम दुर्गा शक्ति नागपाल ने एक समिति गठित कर दी है, जिसकी कमान एडीएम नरेंद्र बहादुर सिंह को अध्यक्ष के रूप में सौंपी गई है। समिति में वरिष्ठ कोषाधिकारी, एसडीएम गोला, पीडी-डीआरडीए, पर्यटन अधिकारी और ईओ गोला को सदस्य बनाया गया है।

शिव मंदिर कॉरिडोर से बढ़ेगा मेले का आकर्षण

चैती मेला की परंपरा के पीछे गहरी आस्था जुड़ी हुई है। होली के बाद बड़ी संख्या में श्रद्धालु मां पूर्णागिरि के दर्शन के लिए जाते हैं और वहां से लौटकर छोटी काशी में भगवान शिव का जलाभिषेक करते हैं। इसी धार्मिक परंपरा के चलते हर वर्ष श्रद्धालु मां पूर्णागिरि से लौटकर यहां पहुंचते हैं, शिव मंदिर में जल चढ़ाते हैं और फिर मेले का आनंद लेते हैं। यही कारण है कि सावन मेले के बाद चैती मेले का भी विशेष महत्व माना जाता है। इस बीच पौराणिक शिव मंदिर कॉरिडोर का निर्माण कार्य तेजी से जारी है, जो मुख्यमंत्री की महत्वाकांक्षी परियोजनाओं में शामिल है। कॉरिडोर के तहत मंदिर के परिक्रमा मार्ग का निर्माण 108 स्तंभों पर किया जा रहा है। इसके पूर्ण होने पर मुख्य मंदिर के साथ ही कुल 11 मंदिरों का निर्माण भी कराया जाएगा। स्थानीय जानकारों का मानना है कि कॉरिडोर निर्माण पूरा होने के बाद सावन और चैती मेले में श्रद्धालुओं की संख्या में काफी वृद्धि होगी, जिससे धार्मिक पर्यटन को भी बढ़ावा मिलेगा।

इतिहास की पगडंडियों पर चैती मेला

- प्राचीन अभिलेखों में इसका उल्लेख 1905 से पूर्व भी एक पारंपरिक मेले के रूप में मिलता है।
- वर्ष 1905 में ब्रिटिश शासन के दौरान इसे औपचारिक स्वरूप मिला और नियमबद्ध आयोजन शुरू हुआ।
- 1877 में यहां लगभग एक लाख लोगों की उपस्थिति दर्ज की गई थी।
- 1905 तक यह संख्या बढ़कर डेढ़ लाख के आसपास पहुंच गई।
- वर्ष 1936 तक इसका संचालन नगर समिति के अधीन रहा।
- 1945 में नगर पालिका परिषद के गठन के बाद से यह मेला उसी के संरक्षण में निरंतर आयोजित हो रहा है।
- वर्तमान में हर वर्ष दो से ढाई लाख श्रद्धालु इस मेले में सम्मिलित होते हैं।

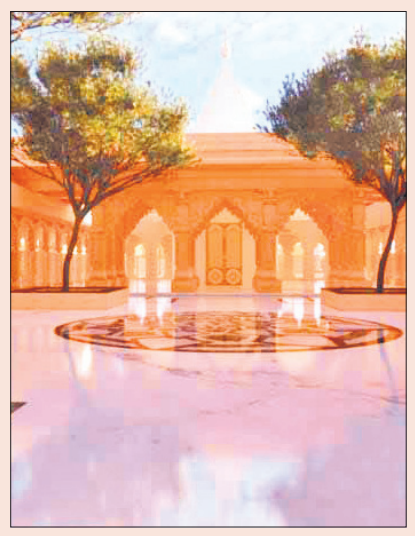

चैती मेला हमारी सांस्कृतिक विरासत और आस्था का जीवंत प्रतीक है। यह मेला न केवल श्रद्धालुओं के लिए धार्मिक आस्था का केंद्र है, बल्कि क्षेत्र की सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक गतिविधियों को भी नई ऊर्जा प्रदान करता है। नगर पालिका परिषद द्वारा मेले में आने वाले श्रद्धालुओं की सुविधा के लिए स्वच्छता, पेयजल, प्रकाश व्यवस्था, सुरक्षा और यातायात प्रबंधन के व्यापक इंतजाम किए गए हैं। हमारा प्रयास है कि हर आगंतुक को सुरक्षित, सुव्यवस्थित और सुखद अनुभव मिले। सभी श्रद्धालुओं से अपील है कि व्यवस्था बनाए रखने में सहयोग करें और इस पावन आयोजन को सफल बनाएं।

-विजय शुक्ल रिंकू, अध्यक्ष नगर पालिका परिषद गोला

आर्ट गैलरी

जैक्सन पोलॉक की नंबर 26

'नंबर 26' जैक्सन पोलॉक द्वारा 1949 में बनाई गई एक महत्वपूर्ण कलाकृति है, जो एक्शन पेंटिंग नामक कला आंदोलन के अंतर्गत आती है, जो अमूर्त कला की व्यापक शैली का एक हिस्सा है।

यह कृति पोलॉक की कैनवास पर अपनाई गई नवीन तकनीक और ऊर्जावान दृष्टिकोण का उत्कृष्ट उदाहरण है, जो उनकी कलात्मकता की एक विशिष्ट विशेषता है और जिसने अमूर्त अभिव्यक्तिवादी आंदोलन में योगदान दिया। 'नंबर 26' का अवलोकन करने पर, कैनवास पर फैले ऊर्जावान छींटों, बूंदों और लूपों से युक्त गतिशील रचना दिखाई देती है। कलाकृति में मुख्य रूप से एकरंगीय कलर का प्रयोग किया गया है, जिन्हें पीले, लाल और नारंगी रंगों के रणनीतिक विस्फोटों से उभारा गया है।

जैक्सन के बारे में

जैक्सन पॉलॉक अमूर्त अभिव्यक्तिवादी आंदोलन के एक प्रभावशाली कलाकार थे। उनका जन्म व्योमिंग में हुआ, लेकिन उनका पालन-पोषण मुख्य रूप से एरिज़ोना और कैलिफ़ोर्निया में हुआ। अपने शुरुआती बीस के दशक में, वे न्यूयॉर्क शहर चले गए, जहां उन्होंने थॉमस हार्ट बेंटन के मार्गदर्शन में आर्ट स्टूडेंट्स लीग में अध्ययन किया। इस दौरान, उन्होंने डब्ल्यूपीए फेडरल आर्ट प्रोजेक्ट के लिए भी काम किया, जिसने महामंदी के दौरान कलाकारों को रोजगार प्रदान किया। डेविड अल्फ़ारो सिकीरोस जैसे मैक्सिकन भित्ति चित्रकारों के साथ-साथ जोन मिरो और पाब्लो पिकासो जैसे यूरोपीय अतियथार्थवादियों से प्रभावित होकर, पॉलॉक ने अपनी विशिष्ट ड्रिप शैली विकसित करने से पहले विभिन्न तकनीकों के साथ प्रयोग करना शुरू किया। इस तकनीक में, जमीन पर बिछे कैनवास पर पेंट टपकाते या उंडेलते हुए, उसके चारों ओर घूमते हुए, बिना किसी पूर्व निर्धारित योजना या रचना के जटिल पैटर्न बनाए जाते थे।

भिटौलीः पहाड़ की बेटियों तक पहुंचता मायके का स्नेह

उत्तराखंड की वादियों में जब चैत्र का महीना दस्तक देता है, तो सिर्फ मौसम ही नहीं बदलता, रिश्तों की मिठास भी एक बार फिर ताजा हो जाती है। उत्तराखंड की इसी मिट्टी से निकली एक परंपरा है भिटौली। एक ऐसा पर्व, जिसमें मायका अपनी विवाहित बेटी तक सिर्फ उपहार नहीं, बल्कि अपना स्नेह, अपनापन और यादें भेजता है। *–रमेश जड़ौत, अल्मोड़ा*

अनोखी परंपरा

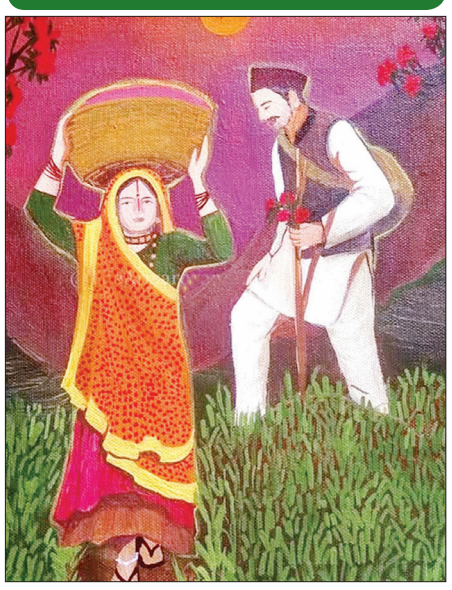

दरअसल, भिटौली कोई औपचारिक परंपरा नहीं, बल्कि भावनाओं का उत्सव है। वह हर साल चैत्र महीने में मनाया जाता है, जो पूरे 30 दिनों का होता है। इसी दौरान माता-पिता और भाई अपनी विवाहित बेटी या बहन के लिए वस्त्र, पकवान और उपहार लेकर उसके ससुराल जाते हैं। यह यात्रा सिर्फ दूरी तय करने की नहीं होती यह उस रिश्ते को फिर से जीने की कोशिश होती है, जो शादी के बाद दूरियों में बंध जाता है। भिटौली की परंपरा की जड़ें उस समय में हैं जब संचार के साधन बेहद सीमित थे। पहाड़ों में बसी बेटियों के ससुराल कई कोस दूर हुआ करते थे। साल भर में मुलाकात भी मुश्किल होती थी। ऐसे में बुजुर्गों ने एक रास्ता निकाला भिटौली। एक ऐसा अवसर, जब परिवार अपनी विवाहित बेटी से मिलने उसके ससुराल जा सके, उसका हालचाल जान सके और उसे यह एहसास दिला सके कि मायका आज भी उतना ही करीब है।

भिटौली की खास पहचान 'साई'

भिटौली की सबसे खास पहचान है साई। यह एक पारंपरिक पकवान है, जिसे चावल को पीसकर, भूनकर और उसमें मिठास मिलाकर तैयार किया जाता है। जब यह साई और अन्य मिष्ठान विवाहित बेटी के हाथों में पहुंचते हैं, तो वह सिर्फ स्वाद नहीं होता वह मायके की यादों का स्वाद होता है। बेटी भी इस खुशी को अपने तक सीमित नहीं रखती। वह अपने ससुराल और आस-पड़ोस में यह कहकर मिठाई बांटती है भिटौली मायके से आई है। इसी एक वाक्य में दीया होता है उसका गर्व, उसका अपनापन।

इंटरनेट ने दूरी को किया खत्म

आज भले ही दिन में कई बार फोन पर हालचाल पूछ लिया जाता हो, वीडियो कॉल से चेहरे देख लिए जाते हों, लेकिन भिटौली की अहमियत कम नहीं हुई है क्योंकि कुछ रिश्ते सिर्फ बातों से नहीं, मिलने से, साथ बैठने से और अपने हाथों से मिठास बांटने से मजबूत होते हैं। भिटौली आज भी उसी सादगी और प्रेम के साथ मनाई जा रही है और शायद यही वजह है कि यह परंपरा आने वाले समय में भी यूं ही जीवित रहेगी। कुल मिलाकर भिटौली सिर्फ एक पर्व नहीं, बल्कि यह याद दिलाने का तरीका है कि दूरी चाहे जितनी भी हो जाए मायका हमेशा दिल के सबसे करीब रहता हैं।

गुरु-शिष्य परंपरा और कलागुरु बीरेश्वर भट्टाचार्य

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

गुरु-शिष्य परंपरा भारतीय शिक्षा-संस्कृति की आधारशिला रही है, जिसका प्रभाव कला-शिक्षा में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन भारत में ज्ञान का संप्रेषण मुख्यतः व्यक्तिगत संबंधों पर आधारित था, जहां गुरु केवल तकनीकी दक्षता ही नहीं, बल्कि जीवन-दृष्टि, संवेदना और नैतिकता भी अपने शिष्यों को प्रदान करते थे। चित्रकला, मूर्तिकला और शिल्प की परंपराएं प्रायः पारिवारिक या कार्यशाला-आधारित ढांचों में पीढ़ी-दर-पीढ़ी विकसित होती रहीं। उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्य चाहे वे अजंता-एलोरा की गुफाएं हों या मध्यकालीन पांडुलिपि-चित्रण यह स्पष्ट करते हैं कि कला का ज्ञान किसी औपचारिक पाठ्यक्रम से अधिक गुरु के सान्निध्य में अर्जित होता था।

यूरोप में मध्यकाल और पुनर्जागरण काल तक कला-शिक्षा का स्वरूप कुछ इसी प्रकार का था, जहां शिल्प-गिल्ड और उस्ताद-शागिर्द परंपरा प्रचलित थी। किंतु 18 वीं सदी के उत्तरार्ध में ब्रिटेन में रॉयल अकादमी ऑफ आर्ट्स जैसी संस्थाओं की स्थापना के साथ औपचारिक कला-शिक्षा का विकास हुआ। इसी मॉडल का प्रभाव ब्रिटिश औपनिवेशिक काल में भारत पर पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप मद्रास, कोलकाता, मुंबई और लाहौर जैसे केंद्रों में कला विद्यालय स्थापित हुए। इन संस्थानों ने अकादमिक यथार्थवाद, परिप्रेक्ष्य और यूरोपीय तकनीकों को भारतीय कला-शिक्षा में स्थान दिया।

हालांकि 20 वीं सदी के प्रारंभ में भारतीय कला-जगत में एक वैचारिक पुनर्जागरण देखने को मिला, जिसका नेतृत्व अबनीन्द्रनाथ टैगोर ने किया। उन्होंने औपनिवेशिक अकादमिक शैली के विरुद्ध भारतीय परंपराओं, लघुचित्रों और पूर्वी एशियाई प्रभावों को आधार बनाकर 'बंगाल स्कूल' की स्थापना की। उनके शिष्य नंदलाल बोस ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया और विश्व भारती विश्वविद्यालय के कला भवन में गुरु-शिष्य संबंध को एक जीवंत शैक्षिक मॉडल के रूप में विकसित किया। यहां शिक्षा केवल कक्षा तक सीमित नहीं थी, बल्कि प्रकृति, लोकजीवन और अनुभव के साथ एक समग्र संवाद थी।

इसी परंपरा में रामकिंकर बैज, शंखो चौधरी, के. जी. सुब्रमण्यम और गुलाम मोहम्मद शेख जैसे कलाकारों ने न केवल अपनी विशिष्ट कलाभाषा विकसित की, बल्कि एक शिक्षक के रूप में भी पीढ़ियों को प्रभावित किया। इनकी शिक्षण पद्धति में संवाद, प्रयोग और आलोचनात्मक चिंतन को प्रमुख स्थान मिला, जो पारंपरिक गुरु–शिष्य संबंध का आधुनिक रूप था। उत्तर भारत में भी अनेक शिक्षकों जैसे रणबीर सिंह बिष्ट, जय कृष्ण अग्रवाल और के. एस. कुलकर्णी ने अपने संस्थानों में इस परंपरा को जीवित रखा। उनके विद्यार्थियों के साथ आजीवन संबंध, मार्गदर्शन और व्यक्तिगत हस्तक्षेप इस बात का प्रमाण हैं कि कला-शिक्षा केवल पाठ्यक्रम का विषय नहीं, बल्कि एक सतत संवाद है। वर्तमान समय में यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन द्वारा लागू किए गए शैक्षिक सुधार -जैसे सेमेस्टर प्रणाली, क्रेडिट-आधारित पाठ्यक्रम और अंतर्विषयी अध्ययन ने कला-शिक्षा को अधिक संरचित और व्यापक बनाया है। फिर भी, इन औपचारिक ढांचों के भीतर गुरु-शिष्य परंपरा का महत्व कम नहीं हुआ है। कला के क्षेत्र में तकनीकी दक्षता के साथ-साथ संवेदनात्मक परिपक्वता, दृष्टि और मौलिकता का विकास आज भी व्यक्तिगत मार्गदर्शन और संवाद पर निर्भर करता है। स्पष्ट है कि भारतीय कला-शिक्षा में संस्थागत विकास के बावजूद गुरु-शिष्य परंपरा एक जीवित और सक्रिय तत्व के रूप में मौजूद है। यह परंपरा केवल अतीत की विरासत नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य की कला-चेतना को आकार देने वाली एक सतत प्रक्रिया है। जहां अन्य विषयों में शिक्षक-छात्र संबंध संस्थान तक सीमित रह जाता है, वहीं कला, संगीत और नृत्य में यह संबंध जीवनपर्यंत बना रहता है।

ऐसे ही एक विरल उदाहरण थे कलागुरु बीरेश्वर भट्टाचार्य। 22 मार्च 2026 को उनके निधन का समाचार न केवल उनके शिष्यों, बल्कि पूरे कला-जगत के लिए अपूर्णीय क्षति के रूप में सामने आया। यह और भी मार्मिक है कि उनके सम्मान में आयोजित समारोह तथा उन पर केंद्रित मोनोग्राफ और पुस्तक के विमोचन की तैयारियां कला एवं शिल्प महाविद्यालय, पटना और पटना म्यूजियम के सौजन्य से 23 और 24 मार्च को होने वाली थीं। देश-विभाजन की पृष्ठभूमि में 1950 में सपरिवार ढाका से पटना आए इस किशोर ने 1952 में राजकीय कला एवं शिल्प विद्यालय, पटना में प्रवेश लिया। आगे चलकर यही विद्यार्थी बिहार ही नहीं, बल्कि भारतीय समकालीन कला इतिहास का एक महत्वपूर्ण हस्ताक्षर बना। वर्ष 1957 से 1993 तक के अपने दीर्घ अध्यापन काल में उन्होंने अपने छात्रों में आधुनिक और समकालीन कला के प्रति जो अभिरुचि जगाई, उसने उन्हें मात्र शिक्षक नहीं, बल्कि 'कलागुरु' के रूप में प्रतिष्ठित किया।

बीरेश्वर भट्टाचार्य का जीवन संघर्ष, संवेदना और सृजन की एक सशक्त यात्रा रहा। उनकी कला में मानवीय त्रासदी, सामाजिक असमानताओं और हिंसा के विरुद्ध गहरी संवेदनशीलता स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने चित्रकला को केवल सौंदर्यबोध का माध्यम नहीं रहने दिया, बल्कि उसे सामाजिक यथार्थ के प्रति सजग हस्तक्षेप की भाषा में रूपांतरित किया। एक शिक्षक के रूप में उनका योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा, उन्होंने अनेक पीढ़ियों के कलाकारों को न केवल तकनीकी दक्षता प्रदान की, बल्कि उन्हें वैचारिक रूप से भी समृद्ध किया। उनके शिष्यों की उपलब्धियां उनके शिक्षकीय व्यक्तित्व का प्रमाण हैं। उनकी कृतियां और उनके द्वारा निर्मित शिष्य-परंपरा आज भी भारतीय समकालीन कला में जीवंत रूप से उपस्थित है। इस महान कलागुरु पर केंद्रित मोनोग्राफ और पुस्तक के प्रकाशन के लिए कला-जगत रबीन्द्रनाथ टैगोर यूनिवर्सिटी एवं विश्वरंग का आभारी रहेगा। अंततः बीरेश्वर भट्टाचार्य का जीवन और उनकी कला हमें यह सिखाती है कि गुरु-शिष्य परंपरा केवल शिक्षण का माध्यम नहीं, बल्कि संवेदना, विचार और सृजन की वह सतत धारा है, जो पीढ़ियों को जोड़ती हुई आगे बढ़ती रहती है। विनम्र श्रद्धांजलि।